10
भाषा व विचार

'भाषा का विचारों के बनने से सम्बन्ध' यह एक जीवन्त विमर्श का मुद्दा है। इस सन्दर्भ में कोई स्पष्ट सर्वमान्य नज़रिया उपलब्ध नहीं है। ऐसे बहुत से तर्क हैं जो बताते हैं कि भाषा; विचारों के निर्माण में और उनको व्यवस्थित करने में मदद करती है। लेकिन इसके विपक्ष में भी बहुत से तर्क हैं जिनके अनुसार किसी चीज़ को जानने की योग्यता तथा विचारों के निर्माण की प्रक्रिया भाषिक योग्यता से बिलकुल अलग है। इस अध्याय में हमारा उद्देश्य इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढना अथवा इनका समाधान करना नहीं, बल्कि यह है कि हम अवधारणाओं के विकास, तर्कपूर्ण दलीलों के निर्माण तथा भाषाई क्षमता के आपसी सम्बन्ध और शब्द व अवधारणा आपस में कैसे जुड़े हैं यह देखें व समझें। साथ ही, यह भी समझें कि मनुष्य में विचार, तर्क व उससे आगे जाने की क्षमता होती है।

मनुष्य क्यों अलग है?

मनुष्य की प्रमुख क्षमताओं में से एक क्षमता है उन चीज़ों के बारे में दृष्टिकोण या अवधारणा बनाना और बातचीत करना जो न सिर्फ वर्तमान में हैं बल्कि वे भी जिनका अस्तित्व भूतकाल में था। हमारी क्षमता इससे कहीं आगे जाती है। हम न सिर्फ उन चीज़ों के बारे में बातचीत कर सकते हैं जो पहले कभी थीं बल्कि ऐसी चीज़ों के बारे में भी जिनका अस्तित्व कभी था ही नहीं। मनुष्य विचारों के सहारे उड़ सकता है या बहुत लम्बी छलाँग लगा सकता है और उन विचारों तक पहुँच सकता है जो पहले नहीं थे। विचारों को पक्का करने के लिए कल्पना को भाषा के सूत्र में पिरो सकता है। भाषा पहले या विचार, यह इतना महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं है जितना यह तथ्य कि इस तरह कल्पनाओं को पिरोकर आगे बढ़ने का काम भाषा के बिना नहीं हो सकता।

मनुष्यों के पास कल्पना करने की अनूठी क्षमता है। कल्पना कर पाने की क्षमता नए विचारों के बनने और धीरे-धीरे उनके ठोस रूप लेने को प्रभावित करती है।

इसके कुछ सरल उदाहरण इस तरह हो सकते हैं, जैसे, पक्षी को उड़ते देख कभी किसी मनुष्य ने सोचा कि क्या हम भी उड़ सकते हैं? और फिर इसमें नए विचार जुड़ते गए कि उड़ने के लिए किन-किन चीज़ों की ज़रूरत होगी? यदि हम उड़ना चाहें तो क्या करें? और भी कई नए विचार जुड़े और अन्ततः हम हवाई जहाज़ जैसी चीज़ बना पाए। विचारों का यह सिलसिला अभी भी रुका नहीं है। अब भी यह विचार जारी है कि किस तरह हवाई जहाज़ की गति को और बढ़ाया जाए। उसको और बड़ा किया जाए ताकि उसमें एक ही बार में ज़्यादा से ज़्यादा लोग यात्रा कर सकें। यह कल्पना कि मनुष्य भी उड़ सकता है तथा इसके ठोस रूप यानी हवाई जहाज़ तक जाने में सिर्फ एक व्यक्ति नहीं बल्कि अनेक व्यक्तियों व उनकी समझ के उपयोग से सम्भव हुआ है। इसी तरह का एक उदाहरण पानी के जहाज़ का है। पहले यह विचार उत्पन्न हुआ होगा कि कुछ चीज़ें पानी पर तैर सकती हैं, फिर यह सवाल उभरा होगा कि ये पानी पर क्यों तैर पाती हैं, इनके क्या विशेष गुण हैं और अन्त में इन विचारों का मूर्त रूप – पानी के जहाज़ का निर्माण इत्यादि। ये कुछ ऐसे विचार हैं जिनसे तकनीकी विकास सम्भव हुआ है। यहाँ यह सवाल उठाया जा सकता है कि क्या भाषा के बगैर कल्पना कर पाना सम्भव है?

विचार, तर्क व उससे आगे

यह बात कि इस तरह के विचार केवल मनुष्य ही बना सकते हैं, हमें यह सोचने व मानने को मजबूर करती है कि मनुष्यों में कुछ अनूठी क्षमता होती है। अगर हम किसी वस्तु पर कोई बल लगा रहे हैं तो उसकी चाल की गणना कर सकते हैं। किसी उपग्रह के चन्द्रमा व सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने के बीच क्या सम्बन्ध है, इसके बारे में बात कर सकते हैं। हम मान्यताओं का एक ऐसा ढाँचा बना सकते हैं जिसमें अन्तर्विरोध नहीं दिखे और फिर इस ढाँचे के अन्दर रहते हुए हम तार्किक विश्लेषण की सहायता से कई ऐसे निष्कर्षों तक पहुँच सकते हैं जो इस ढाँचे में फिट बैठेंगे। हम एक-दूसरे से असहमत हो सकते हैं और दूसरे के समक्ष अपनी असहमति महज़ प्रकट ही नहीं कर सकते बल्कि इस असहमति का कारण भी बता सकते हैं। संक्षेप में, इन उदाहरणों से यह भी पता चलता है कि मनुष्य के पास विचारों को व्यवस्थित करने की, तर्क के लिए रूपरेखा बनाने की और विश्लेषण करने की योग्यता भी होती है। एक कथन का दूसरे कथन से क्या जुड़ाव है और इन दोनों के जुड़ाव के पीछे तर्क क्या है? यह समझने की भी क्षमता होती है।

यह भी स्पष्ट है कि तर्कों का यह सिलसिला चाहे विज्ञान में हो, चाहे भूगोल, इतिहास, गणित, दर्शन या किसी और विषय में, इसकी सामग्री व विषयवस्तु को भाषा के माध्यम से ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

इन विषयों के कुछ पहलू भाषा के दायरे से अलग भी हो सकते हैं, इस मसले पर काफी विवाद है। जैसे, किसी पहलू के बारे में सोच पाना, उसके बारे में एक ऐसी छवि देख पाना जिसे बाद में भाषा में व्यक्त किया जाए इनको मानव की क्षमता माना गया है लेकिन इन सबको दूसरों के साथ बाँटने तथा काम करने के लिए हमें भाषा की आवश्यकता होगी। यह कहना कठिन है कि वास्तविकता को समझने की हमारी क्षमता किस हद तक हमारी भाषाई क्षमता से निर्धारित होती है।

यद्यपि अन्तिम निष्कर्ष के तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि इन्यूइट के पास बर्फ के लिए ज़्यादा शब्दों का होना उनको बर्फ के विभिन्न रूपों में अन्तर कर पाने की अधिक योग्यता देता है, लेकिन यह स्पष्ट है कि विभिन्न किस्म की बर्फ के बारे में हमारी सोच दूसरों के साथ बाँटने के लिए हमें उन विशिष्ट शब्दों की आवश्यकता होती है जो बर्फ के अलग-अलग प्रकार को समझने के लिए उनका अच्छी तरह विवरण दे सकें।

अवधारणाएँ कैसे बनती हैं?

यह समझने में स्केम्प का यह उदाहरण मददगार हो सकता है कि किसी अवधारणा को अर्जित करने अथवा उसके विकास की शुरुआत एक ठोस/मूर्त वस्तु की संकल्पना के साथ होती है। इसके बाद यह अवधारणा या तो बहुत ही संकीर्ण और सीमित रह सकती है, सिर्फ उन्हीं वस्तुओं तक जो उस वस्तु के जैसे दिखते हैं, या फिर बहुत ज़्यादा व्यापक हो सकती है और व्यापक होने पर वे वस्तुएँ भी उस वर्ग में आ सकती हैं जो उस वर्ग की नहीं हैं। यदि कुर्सी का उदाहरण लें तो आप एक विशेष प्रकार की कुर्सी को ही कुर्सी मान सकते हैं। या फिर आप इसको बहुत ज़्यादा फैला सकते हैं और बैठने की दूसरी चीज़ें, जैसे कि सोफा, व्हील चेयर, टेबल, स्टूल को भी इस अवधारणा में शामिल कर सकते हैं। और आगे बढ़ें तो कुर्सी का मतलब पद भी होता है। कुर्सी लकड़ी, प्लास्टिक या लोहे की बनती है, यह भी इसमें शामिल हो सकता है।

शब्द, अवधारणाएँ व उनका जाल

किसी शब्द का बार-बार विशिष्ट सन्दर्भों में प्रयोग व उसके उपयोग का विश्लेषण धीरे-धीरे हमें उस अवधारणा को समझने व दूसरी अवधारणाओं को उससे अलग करने में मदद करता है। बहुत से उदाहरणों से हम धीरे-धीरे उन चीज़ों के बारे में बात करने की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं जो सामने नहीं हैं। और वह भी चीज़ों के बारे में इस तरह से बात करना जिसमें उस चीज़ पर नहीं बल्कि उसके किसी एक पहलू पर ही ध्यान देना हो। मिसाल के लिए, हम किसी वस्तु को देखते हैं और उसे गोल कहते हैं, फिर हम किसी दूसरी वस्तु को देखते हैं जो पहले वाली वस्तु से फर्क है लेकिन उसे भी हम गोल कहते हैं। यहाँ हम एक ऐसी स्थिति बना रहे हैं जिससे उस वस्तु के ज़रिए हम गोल की अमूर्त संकल्पना बना पाते हैं जो उस विशिष्ट वस्तु से इतर है और यह बात कुर्सी के सन्दर्भ में भी एक हद तक सही है।

हम अपने बारे में ठीक वैसे ही बात कर सकते हैं जैसे कोई और व्यक्ति हमारे बारे में कर सकता है। हम सचेत रूप से खुद को एक अलग अस्तित्व के रूप में देख पाने की योग्यता भी रखते हैं और यह योग्यता हमारे द्वारा उपयोग की गई भाषा में झलकती है। हालाँकि अन्तिम तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें से कुछ योग्यताएँ जानवरों में नहीं हैं। यह स्पष्ट है कि जिस तरह से मानव संवाद में सम्मिलित होने की योग्यता रखते हैं तथा जिस तरह से वे दर्शन व अध्यात्म के अलग-अलग विषय/क्षेत्र बना सकते हैं उनके पास अध्यात्म के उन सभी नियमों को तोड़ने की स्वतंत्रता भी होती है जो स्वयं उन्होंने बनाए हैं। यह भी बहस होती है कि हमारे प्रमुख विचार और धारणाएँ या मत हमारी मातृभाषा से जुड़े होते हैं या नहीं। बहुत से उदाहरणों में यह स्पष्ट झलकता है कि जल्दी-जल्दी बोलते वक्त हम अपनी मातृभाषा का ही प्रयोग करते हैं। और इसी वजह से फिर से यह बात ज़ेहन में आती है कि भाषा हमारी पहचान का हिस्सा है और भाषा से ही हमारी रचना हुई है।

भाषा और विचार का सम्बन्ध

भाषा, विचार और वास्तविकता के बीच के रिश्ते को भाषाविद्, मनोवैज्ञानिक और नृविज्ञानी (Anthropologists) सदियों से समझने की कोशिश कर रहे हैं। दार्शनिक प्लेटो अपने 'रूप के सिद्धान्त' (Theory of Form) में यह वर्णित करते हैं कि भाषा और विचार एक अमूर्त अवधारणा, जिसे 'रूप या आकार' कहते हैं, की एक शाखा के रूप में अपना अर्थ रखते हैं। लेकिन पश्चिमी सोच के अनुरूप अन्तत: प्लेटो भाषा को वास्तविकता पर आधारित मानते हैं।

इसी तर्ज पर दार्शनिक जॉन लॉक ने भाषा और विचारों के सम्बन्ध को इस प्रकार प्रस्तुत किया: 'आस-पास की वस्तुओं से हमारी इन्द्रियों को जिस प्रकार की अनुभूति मिलती है, उन्हें वे दिमाग तक पहुँचाती हैं और इसी तरह गरम, ठण्डा, पीला, मुलायम आदि की धारणा हमारे दिमाग में बनती है।' हम कैसे सोचते हैं और वास्तविकता को कैसे समझते हैं और फिर वह किस तरह हमारी भाषा में झलकती है, इस बारे में लॉक का यह कथन अनेक दार्शनिकों और मनोवैज्ञानिकों की सोच का प्रतिनिधित्व करता है।

लेकिन दार्शनिकों की इस आम सोच के विपरीत जर्मन विद्वान विलियम वॉन हमबोल्ट ने 18वीं शताब्दी में अपने *विश्व-दृष्टिकोण* (Weltanshauung) नामक प्राक्कल्पना के तहत कहा कि भाषा और विचार को अलग नहीं किया जा सकता और भाषा पूरी तरह विचारों को निर्धारित करती है। हमबोल्ट ने इस बात पर ज़ोर दिया कि भाषाओं में अर्थ-सम्बन्धी गहरे अन्तर होते हैं और भाषा की संरचना वक्ता के विश्व-दृष्टिकोण और संज्ञान को प्रभावित करती है। इस विचार को 'भाषाई सापेक्षता' (Linguistic Relativity) और 'सांस्कृतिक सापेक्षता' (Cultural Relativity) के नाम से जाना जाता है। हमबोल्ट के दृष्टिकोण के कई निहितार्थ हैं। उसमें से एक यह है कि प्रत्येक इन्सान का भाषा के साथ गहरा रिश्ता होता है। उसके संज्ञान का व दुनिया में जो हो रहा है उसको देख पाने का नज़रिया भी उसकी भाषा पर निर्भर करता है। इन्सान की सीखने व खोजने की क्षमता का आधार भी भाषा ही है। उनके अनुसार भाषाएँ

केवल तथ्यों अथवा समझ को प्रस्तुत नहीं करती वरन् नए अज्ञात ज्ञान व तथ्यों को खोजने व पाने का औज़ार भी होती हैं। इसमें एक और बात भी निहित है, यह कि यथार्थ व ऐसे तथ्य जो वस्तुनिष्ठ हैं वे भी किसी न किसी तरह से व्यक्ति के अहम, उसकी समझ, व्यक्तित्व व स्वत्व की ऊर्जा से ही निकलते हैं। यानी भाषा का प्रदीपन, विचार व उनके ग्रहण व विश्लेषण से भी गहरा सम्बन्ध है। व्यक्ति, भाषा व उसकी संस्कृति एक-दूसरे की रचना करते हैं, एक-दूसरे को निखारते हैं।

हमबोल्ट के अनुसार "लोगों की इच्छा होती है कि वे विविध भाषाओं के शब्दों को सर्वमान्य व हर जगह वैध संकेतों में व्यक्त कर सकें । किन्तु जो कुछ (इन्सान द्वारा) सोचा जा सकता है उसका एक बहुत छोटा हिस्सा ही इस तरह निरूपित किया जा सकता है। क्योंकि यह संकेत अपनी प्रकृति के कारण उन्हीं धारणाओं अथवा सम्प्रत्ययों पर ठीक बैठ सकते हैं जो मात्र कृत्रिम रूप से रचित है या फिर सिर्फ तार्किकता से बनाए जा सकते हैं... हर बात व्यक्ति के चीज़ों को व्यक्तिगत ढंग से देखने पर निर्भर है और उसकी भाषा उसका एक अभिन्न हिस्सा है"

1930 के दशक में 'भाषिक सापेक्षता' के इसी दृष्टिकोण पर आधारित सेपियर-वोर्फ प्राक्कल्पना ने काफी ध्यान आकर्षित किया। यह सेपियर के मूल अमरीकी भाषाओं के अध्ययन पर आधारित थी। इस अध्ययन का निम्न अंश खासतौर पर आलोचना, विवेचन और भविष्य में कई अध्ययनों का आधार बना:

> इन्सान न तो केवल वस्तुपरक (Objective) दुनिया में रहते हैं और न ही केवल सामाजिक प्रक्रियाओं की दुनिया में। बल्कि वे काफी हद तक उस भाषा पर आश्रित हैं जो उनके समाज में उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम बन चुकी है। तथ्य यह है कि 'वास्तविक दुनिया' अनजाने में ही बहुत हद तक समुदाय के भाषाई स्वभाव पर बनी होती है। कोई भी दो भाषाएँ कभी इतनी समान नहीं होतीं कि सामाजिक वास्तविकता (Social Reality) को बिलकुल समान रूप में व्यक्त कर सकें। जिस संसार में विभिन्न समुदाय/समाज रहते हैं वे महज़ एक ही संसार के अलग-अलग नाम नहीं बल्कि अलग-अलग संसार ही हैं।

सेपियर और उनके शिष्य के इसी प्रकार के कथनों के कारण बहुत से विद्वान और अन्य लोग इस प्राक्कल्पना को या तो सही या गलत साबित करने में जुट गए। आज अधिकतर शोधकर्ता सेपियर-वोर्फ प्राक्कल्पना अर्थात 'भाषिक सापेक्षता' के सम्बन्ध में इन तीनों में से किसी एक के पक्ष में तर्क देते हैं:

(i) भाषा विचारों पर गहरा प्रभाव डालती है। (सबल व्याख्या)

(ii) भाषा कुछ हद तक विचारों को प्रभावित करती है। (कमज़ोर व्याख्या)

(iii) भाषा विचारों को प्रभावित नहीं करती।

(i) भाषा विचारों पर गहरा प्रभाव डालती है

सेपियर-वोर्फ प्राक्कल्पना के पक्ष में वोर्फ़ ने होपी आदिवासियों का उदाहरण दिया। उनके अनुसार होपी भाषा में अँग्रेज़ी के समकक्ष 'समय' की अवधारणा के लिए कोई शब्द या अन्य व्याकरणिक इकाई नहीं है (जैसे होपी में एक दिन, एक घण्टा, मिनट इस तरह के शब्द नहीं हैं) यानी समय की वास्तविकता को देखने का होपी नज़रिया भाषा-विशिष्ट है और उसकी सटीक अभिव्यक्ति के लिए वह भाषा जानना ज़रूरी है।

वोर्फ के इस उदाहरण की इसलिए आलोचना की गई क्योंकि वह संज्ञानात्मक अन्तर को अलग से दर्शाने की बजाय भाषिक अन्तर के आधार पर ही उसके बारे में निष्कर्ष निकाल रहे हैं। यानी भाषिक भिन्नता को ही संज्ञानात्मक भिन्नता का सबूत बना दिया गया।

सेपियर-वोर्फ प्राक्कल्पना के पक्ष में अक्सर दिया जाने वाला तर्क है रंगों के बोध का। प्राक्कल्पना के अनुसार अगर विभिन्न भाषाओं में रंगों का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है तो उन समुदायों की रंगों की अनुभूति भी अलग-अलग होगी।

1970 में किए गए एक शोध में पापुआ न्यू गिनी के बोरिन्मो आदिवासियों को 160 अलग-अलग रंग वर्गीकृत करने के लिए दिए गए। बोरिन्मो वर्गीकरण के लिए कम ही श्रेणियाँ बना पाए और वे अँग्रेज़ी के नीले और हरे रंगों में भेद भी नहीं कर पाए। बल्कि उन्होंने ऐसे दो रंगों (जो बोरिन्मो में नॉल और वोर के नाम से जाने जाते हैं) को अलग श्रेणी में डाला जो अँग्रेज़ी में एक ही रंग 'पीले' के तहत आएँगे। बोरिन्मो रंगों का नीले/हरे के बजाय नॉल/वोर ('पीले' के भिन्न प्रकार) के आधार पर ज़्यादा अच्छी तरह मिलान कर लेते हैं जबकि इसके विपरीत अँग्रेज़ी भाषी 'पीले' के अलग-अलग प्रकारों की बजाय नीले/हरे के आधार पर ज़्यादा अच्छा मिलान कर लेते हैं। शोधकर्ताओं के अनुसार भाषा में रंगों की अलग-अलग श्रेणियों के लिए नाम होने या न होने से उस भाषा को बोलने वालों की उन रंगों की समझ/बोध पर प्रभाव पड़ता है यह निष्कर्ष सेपियर-वोर्फ प्राक्कल्पना के पक्ष में जाता है।

(ii) भाषा कुछ हद तक विचारों को प्रभावित करती है

भाषा और विचारों के सम्बन्ध में शोध करना मुश्किल नहीं है, मुश्किल है ऐसे अलग-अलग भाषिक व अभाषिक सन्दर्भों का समुच्चय बनाना जो इस प्राक्कल्पना की सही जाँच कर सकें।

(iii) भाषा विचारों को प्रभावित नहीं करती है

शोधकर्ता सेपियर-वोर्फ प्राक्कल्पना के विरोध में तीन मुख्य बिन्दुओं का प्रयोग करते हैं: (i) अनुवादिकता, (ii) भाषिक और अभाषिक घटनाओं/सन्दर्भों में अन्तर और (iii) सार्वभौमिक सिद्धान्त। अनुवादिकता के सन्दर्भ में कई विद्वानों का कहना है कि चाहे भाषाएँ बारीकियों को अभिव्यक्त करने में एक-दूसरे से कितनी भी भिन्न हों मगर फिर भी इन बारीकियों को एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुदित करना सम्भव है।

ऐरिक लैननबर्ग का सेपियर-वोर्फ प्राक्कल्पना के विपक्ष में तर्क है कि "भाषिक और अभाषिक घटनाओं में सहसम्बन्ध बनाने से पहले उनका अलग से अवलोकन और विवरण होना ज़रूरी है।" लैननबर्ग के अनुसार यदि भाषिक और अभाषिक सन्दर्भों में कोई अन्तर ही न किया जाए तो भाषा की विचारों को प्रभावित करने की बात निराधार है और इसके पक्ष में दिया गया सबूत पूरी तरह भाषिक भिन्नताओं पर ही आधारित है।

तीसरा मुद्दा है सार्वभौमिकता की अवधारणा का। इसके सन्दर्भ में पोर्ट रोयाल व्याकरण का के अनुसार, "व्याकरण में कुछ ऐसी बातें देखने को मिलती हैं जो हर भाषा में पाई जाती हैं। इसे हम सामान्य व्याकरण कहते हैं। यानी व्याकरण, जिसका मकसद विचारों को 'अभिव्यक्त करना होता है', दो तरह के नियमों पर चलती है। इनमें से एक प्रकार उनका है जो अपरिवर्तनीय सत्य (अविवादित सत्य) है और जिनका सार्वभौमिक रूप से पालन होता है जैसे ये सीधे विचारों के प्रारूप पर ही लागू होते हैं, विचारों के ही विश्लेषण से निकलते हैं और उन्हीं का निष्कर्ष होते हैं।" सार्वभौमिकता का सिद्धान्त, जो आम तौर पर नोम चॉमस्की से जोड़ा जाता है, एक ऐसी गहरी संरचना (Deep Structure) की बात करता है जो सभी भाषाओं में एक-सी होती है। यदि इसे भाषिक सापेक्षता के सन्दर्भ में देखें तो इसके मुताबिक सभी भाषिक-सांस्कृतिक समुदायों को वास्तविकता एक जैसी दिखेगी। यह निष्कर्ष वोर्फ के भाषा-आधारित सामुदायिक भिन्नताओं के बिलकुल विपरीत है।

भाषिक और अभाषिक सन्दर्भ

अधिकतर शोधकर्ता अब तक यह मानने को तैयार नहीं हैं कि भाषा विचारों को तय करती है लेकिन होपी आदिवासियों और अन्य उदाहरणों के आधार पर वे भाषा का कुछ हद तक विचारों पर प्रभाव ज़रूर मानते हैं। भाषिक सापेक्षता तय करने में सवाल यह नहीं है कि भाषा विचारों को प्रभावित करती है या नहीं, बल्कि यह कि कितना प्रभावित करती है।

भाषिक सापेक्षता की इस कमज़ोर व्याख्या के पक्ष में कई उदाहरण दिए जाते हैं।

पहला उदाहरण (अँग्रेज़ी व नावाहो भाषा)

यह उदाहरण लिंडा रॉजर्स द्वारा किए गए प्रयोग का है। रॉजर्स ने अँग्रेज़ी और नावाहो जानने वाले द्विभाषी बच्चों को एक कहानी सुनाई और साथ-साथ उनकी मस्तिष्क तरंगों को रिकॉर्ड किया। उन्होंने पहले अँग्रेज़ी में कहानी सुनाई और देखा कि बच्चों के मस्तिष्क का बायाँ हिस्सा अधिक सक्रिय था। फिर उन्होंने नावाहो में कहानी सुनाई तो मस्तिष्क के दाएँ गोलार्ध में प्रतिक्रिया पाई। इससे रॉजर्स ने निष्कर्ष निकाला कि अँग्रेज़ी, जो संज्ञा-केन्द्रित भाषा है, बाएँ गोलार्ध द्वारा विश्लेषित होती है। जबकि नावाहो, जो क्रिया-केन्द्रित भाषा है, दाएँ गोलार्ध में विश्लेषित होती है। रॉजर्स के अनुसार इससे साबित होता है कि श्रोताओं और विषयवस्तु के एक जैसा होते हुए भी अलग-अलग भाषाओं के विश्लेषण की प्रक्रिया में अन्तर था।

दूसरा उदाहरण (हिन्दी व अँग्रेज़ी)

भाषा के विचारों को प्रभावित करने के पक्ष में एक और तर्क है किसी शब्द, वाक्यांश या विचार को एक भाषा से दूसरी में आबद्ध करने का। कोई भी द्विभाषी यह बता सकता है कि कुछ विचार एक भाषा में दूसरी से अधिक आसानी से अभिव्यक्त हो सकते हैं। वही विचार जिसे एक भाषा एक ही शब्द में समेट दे उसे दूसरी भाषा में समझाने में एक गद्यांश तक लग सकता है। मिसाल के लिए, अँग्रेज़ी में जिसे हम circularity of arguments कहते हैं, उसके लिए हिन्दी में हमारे पास कोई शब्द/वाक्यांश नहीं है तो पूरा विवरण देना ही पड़ेगा। इसी तरह reason, logic, infer, deduce...जैसे शब्दों के लिए भी पूरा विवरण देना पड़ेगा या नए शब्द गढ़ने पड़ेंगे व फिर उनका भी विवरण देना पड़ेगा।

अलास्का की देनाइना ऐथाकस्कन नामक इन्यूइट जनजाति की भाषा में झरनों और पगडण्डियों के लिए एक पूरा शब्द संग्रह है, धीमे या तेज़ प्रवाह वाली जगह, पिघलती/गलती हुई बर्फ से ढँकी हुई जगह, ऐसी पगडण्डी जिसकी बर्फ अपनी राह से हट गई हो, लकड़ियाँ लाने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली पगडण्डी। इन सबके लिए इस भाषा में एक विशेष शब्द मौजूद है।

एक भाषा में किसी दूसरी भाषा के शब्द या वाक्यांश को आबद्ध करने की क्षमता, जिसे अँग्रेज़ी में कोडेबिलिटी (Codability) कहते हैं, खुद अपना एक उदाहरण है। यह कोडेबिलिटी कुछ हद तक भाषा का विचारों पर प्रभाव ज़रूर दर्शाती है लेकिन इससे एक भाषा-भाषियों का दूसरी भाषा-भाषियों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली अवधारणाएँ या श्रेणियाँ बनाने का बोध बाधित नहीं हो जाता।

सेपियर-वोर्फ की प्राक्कल्पना को सही या गलत साबित करने के लिए अध्ययन की परिपूर्ण स्थिति तो नहीं हो सकती क्योंकि उसके निहितार्थ बहुत विस्तृत हैं। इसके लिए शोधकर्ताओं के पास कुछ विशिष्ट सन्दर्भों में छोटे-मोटे उदाहरण ही जाँचने के लिए रह जाते हैं। इन उदाहरणों, जिनमें भाषा की विचारों को प्रभावित करने की सम्भावना है, के आधार पर हुए शोधों को देखते हुए अधिकतर शोधकर्ता इस प्राक्कल्पना के कमज़ोर प्रारूप को मानते हैं।

निष्कर्ष

"भाषा और समाज एक-दूसरे में इस तरह गुँथे हुए हैं कि एक को दूसरे के बिना समझ पाना असम्भव है। ऐसा कोई मानव समाज नहीं है जो भाषा पर निर्भर न करता हो, उससे प्रभावित न होता हो और खुद उसे प्रभावित न करता हो।" (यह कथन भाषा, समाज और वास्तविकता के बीच के सम्बन्ध को सबसे अच्छी तरह व्यक्त करता है) सेपियर-वोर्फ प्राक्कल्पना ने भाषा के बारे में लोगों के सोचने के नज़रिए को बदल दिया है। जहाँ कुछ लोग उनके मत से सहमत हैं वहीं दूसरे लोग इसके विरोध में तर्क देते हैं। लेकिन अब हर शोध

प्रमाणित करता है कि भाषा का विचारों और वास्तविकता को देखने के नज़रिए पर प्रभाव तो पड़ता है, लेकिन वह वास्तविकता को नियंत्रित नहीं करती।

सन्दर्भ

- भाषा व भाषा शिक्षण, द्वितीय वर्ष, डीएड सामग्री, 2013, राज्य शैक्षिक अनुसन्धान परिषद, छत्तीसगढ़।
- रिचर्ड आर स्केम्प, 1987, द *साइकोलोजी ऑफ लर्निंग मेथेमेटिक्स*, हिल्सडेल, न्यूजर्सी: लारेंस एरीबॉम एसोसिएट्स।
- वी वी हम्बोल्ट, 1999, *ऑन द डाइवर्सिटी ऑफ ह्यूमन लैंग्वेज कंस्ट्रक्शन एंड इट्स इंफ्लुएंस ऑन द मेंटल डेव्लपमेंट ऑफ द ह्यूमन स्पीसीज़*, माइकल लोसोन्स्की द्वारा अनूदित, केंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- जॉन एल लोके, 1983, *फोनोलॉजिकल एक्विज़िशन एंड चेंज*, न्यू यॉर्क: एकेडेमिक प्रेस।
- एरिक लेननबर्ग, 1967, *बायोलॉजिकल फाउण्डेशंस ऑफ लैंग्वेज*, न्यू यॉर्क: विले।
- जेरी एच गिल, 1997, *इफ ए चिम्पेंज़ी कुड टॉक एंड अदर रिफ्लेक्शंस ऑन लैंग्वेज एक्विज़िशन*, टकसन: यूनिवर्सिटी ऑफ एरिज़ोना प्रेस।
- https://www.britannica.com/topic/Hopi-language
- https://en.wikipedia.org/wiki/Wilhelm_von_Humboldt1